प्रवचन नं. १२४ गाथा-४९, दिनाङ्क ०१-११-१९७८, बुधवार
कार्तिक शुक्ल १, वीर निर्वाण संवत् २५०४

श्री समयसार, ४९ गाथा का अव्यक्त बोल है। बहुत सरस! यह मांगलिक का है। पहला बोल तो ऐसा कहा कि जो छह द्रव्य-लोक है, वह तो ज्ञेय है-व्यक्त है, तथापि उससे जीव अन्य है। यह निर्णय कौन करता है? पर्याय ऐसा निर्णय करती है। आहाहा! 'मैं' छह द्रव्य ज्ञेय और व्यक्त हैं, उनसे मैं (भिन्न) ज्ञायक और अव्यक्त अर्थात् वस्तु, वह जीव हूँ। आहाहा! शब्द ऐसा है न? आहाहा! एक बोल हो गया है।

दूसरा (बोल) **कषायों का समूह जो भावकभाव।** आहाहा! जो पर्याय में भावक जो कर्म, उससे होनेवाले विकल्प जो शुभ और अशुभ हैं, वे व्यक्त हैं, प्रगट हैं; उनसे मैं अन्य हूँ। आहाहा! पर्याय ऐसा जानती है कि यह कषायों का समूह जो भावकभाव है, उनसे मैं भिन्न हूँ। दो के बीच पड़ी हुई पर्याय... आहाहा! पर्याय ऐसा जानती है अनुभूति... भाषा तो क्या करे? कि मैं एक जीवद्रव्य हूँ, अव्यक्त अर्थात् पर्याय में आया नहीं और पर में आया नहीं-इस अपेक्षा से; बाकी है तो व्यक्त। आहाहा! इस अपेक्षा से मैं आत्मा, जीव,.. कषायों के समूह विकल्प की जाति चाहे जो हो। आहाहा! गुण-गुणी के भेद का विकल्प-राग हो, शास्त्र को लिखने का विकल्प हो। आहाहा! उस विकल्प के समूह से-वह भावकभाव कर्म का भाव है। आहाहा! शास्त्र लिखते समय विकल्प है न? कर्ता नहीं। यह जो कर्ता होकर लिखते हैं, वे तो मिथ्यादृष्टि हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो विकल्प आया है, वह कषाय का समूह है और भावक का भाव है; मेरे भावक का भाव वह नहीं। आहाहा! मेरा भाव तो उस विकल्प से (भिन्न है)। आहाहा! हें? लिखते समय भी आचार्य ऐसा कहते हैं कि यह विकल्प जो है, वह तो कर्म के भावक का भाव है, मेरे द्रव्य का भाव वह नहीं; मेरी वस्तु है, उसका वह भाव नहीं। आहाहा! है? ऐसी बात है प्रभु! आहाहा! ओहोहो! **कषायों का समूह जो भावकभाव व्यक्त है,...** प्रभु है तो इससे भिन्न, यहाँ अव्यक्त कहा है। अव्यक्त का अर्थ कि पर्याय में नहीं आता, द्रव्य बाहर में नहीं आता, इस अपेक्षा से (अव्यक्त कहा है)। वस्तुरूप से तो द्रव्य व्यक्त / प्रगट ही है। आहाहा! ये दो बोल तो चल गये हैं।

अब यह तीसरा—**चित्सामान्य में...** बहुत अलौकिक बात है, बापू! आहाहा! ज्ञायकभाव चित्सामान्य अर्थात् दर्शन-ज्ञानरूपी चित्, ऐसा जो सामान्यरूप। चित्सामान्य—चित् अर्थात् ज्ञान और दर्शन, ऐसा जो शाश्वत् सामान्य स्वभाव, उसमें दूसरे सब गुण आ जाते हैं। आहाहा! मैं कौन हूँ—ऐसा निर्णय सम्यग्दर्शन की पर्याय अथवा ज्ञान की पर्याय ऐसा निर्णय करती है। आहाहा! यह **चित्सामान्य में...** ज्ञायक दर्शन और ज्ञान, ऐसा सामान्य अर्थात् ध्रुव, उसमें **चैतन्य की समस्त व्यक्तियाँ...** चैतन्य की सर्व प्रगट अवस्थायें—भूत और भविष्य की, उसमें अन्तर्मग्न है। अर्थात् वह अन्तर्मग्न है अर्थात् कि वे गुणरूप हैं। आहाहा!

पूर्व और पश्चात्... आहाहा! मति-श्रुतज्ञान की पर्याय प्रगटी है, वर्तमान, वह ऐसा कहती है, वर्तमान—बाह्य-वह ऐसा कहती है कि भूतकाल की मेरी मति, श्रुतज्ञान की पर्यायें और भविष्य में भी मति-श्रुत और केवलज्ञान की भी पर्याय... यह तो एक ज्ञान से बात ली है, ऐसी अनन्त गुण की... आहाहा! मैं आत्मा कौन हूँ? कि चित्सामान्य जो वस्तु है, उसमें चैतन्य की सर्व प्रगट दशायें... प्रगट तो पर्याय थी, तब की अपेक्षा से है। भूतकाल में थी, भविष्य में होगी, इस अपेक्षा से प्रगट कहा, परन्तु मेरे स्वरूप में वे अभी नहीं, भेद उसमें नहीं। आहाहा। अकेला ज्ञायकभाव, जिसे यहाँ पर्याय और पर की अपेक्षा से अव्यक्त कहा, परन्तु पर्याय में वह व्यक्त होता है। आहाहा! ऐसी बात है। प्रवीणभाई! आहाहा!

मैं चैतन्य जो सामान्य, जो शाश्वत् चीज हूँ। आहाहा! उसमें जो एक यहाँ तो मैंने मति-श्रुत की-ज्ञान की पर्याय ली है, ऐसे श्रद्धा की, ऐसे चारित्र अर्थात् शान्ति की (जो) हो गयी और होगी। आहाहा! वे सभी पर्यायें—वर्तमान के अतिरिक्त, क्योंकि वर्तमान पर्याय में तो यह निर्णय किया कि मैं यह हूँ, मेरा स्वरूप सामान्य जो है, उसमें सभी अवस्थायें निमग्न हैं। अवस्थारूप से अवस्था अन्दर नहीं है, भाई! यह क्या कहा? कि मति-श्रुतज्ञान की मेरी पर्याय हो गयी, वह तो क्षयोपशमभाव की थी और अमुक तक होगी, वह क्षयोपशम की है और फिर होगी, वह क्षायिक की है। आहाहा! परन्तु मेरा भगवान ये भूत और भविष्य की पर्याय अन्तर्निमग्न अर्थात् पारिणामिकभाव से है। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : पारिणामिकभाव से है अर्थात् क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थात् प्रगट पर्याय का जो भाव था, वह भाव अब अन्दर में नहीं। जो त्रिकाली ध्रुवस्वभाव है, उसमें सामान्य स्वभाव उसका हो गया है। पारिणामिक-स्वभाव अर्थात् एकरूप स्वभाव। यह जो व्यक्त पर्याय है, वह तो अनेक प्रकार से भिन्न-भिन्न कोई क्षयोपशम की, कोई क्षायिक की, मति-श्रुत क्षयोपशम की, समकित क्षायिक होता है उसकी, आहाहा! चारित्र के स्वरूप के आचरण की प्रगट अवस्था है वह; हो गयी वह; होगी वह, आहाहा! ऐसी-ऐसी ज्ञान की, दर्शन की, चारित्र की, आनन्द की, आहाहा! आनन्द की पर्याय भी, मैं साधक हूँ तो मेरी जो आनन्द की पर्याय बीत गयी, वह अन्तर में गयी, भले वह आनन्द की पर्याय क्षयोपशमभाव से हो परन्तु अन्तर (में) गयी, वहाँ पारिणामिकभाव से हो गयी। आहाहा! पारिणामिकभाव अर्थात् सहज ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव में वह आ गयी। वहाँ आगे वह पर्याय अन्दर क्षयोपशमभाव से रहती है (ऐसा नहीं है)। ऐसी तो भाषा यह **चित्सामान्य में चैतन्य की समस्त व्यक्तियाँ निमग्न (अन्तर्भूत) हैं,...** तब यह जो क्षयोपशमभाव है, वह अन्तर्भूत है ? समझ में आया ? चन्दुभाई! ऐसा सूक्ष्म है।

अब ऐसा नूतन वर्ष है। आहाहा! २०३५ है। पाँच और तीन-आठ, २००० यह तो अंक दूसरा आया। आठ तो दूसरा रहा, आठ कर्म से और उनके भेदों से भी भिन्न भगवान है, ऐसा कहते हैं। **चित्सामान्य में...** अर्थात् जितनी शक्तियाँ मलिनरूप हो गयी और निर्मलरूप भी हो गयी और अभी भी भविष्य में थोड़ी कितनी ही मलिनरूप से रहेगी और कितनी ही व्यक्त निर्मल होगी, वे सब मेरे स्वरूप में अन्दर में एकाकार है। आहाहा! इसी तरह प्रगट ज्ञान की पर्याय, प्रगट श्रद्धा की पर्याय, प्रगट आनन्द की पर्याय, प्रगट स्वरूप आचरण की स्थिरता की पर्याय, ऐसी अनन्त पर्यायों का एकरूप प्रगट, वह यह जीव हूँ - ऐसा निर्णय करती है। भाषा (में) तो एक पर्याय को लिया परन्तु उसकी पर्याय में अनन्त पर्यायें साथ है न ? आहाहा! एक समय में अनन्त पर्यायें प्रगट / व्यक्त है। वे अन्तर में गयी नहीं। आहाहा! समझ में आया ? अरे! कैसा सम्हाला है, देखो न, संक्षिप्त भाषा में!

मैं एक ज्ञायक सामान्यस्वभाव, ध्रुवस्वभाव, एकरूप स्वभावभाव में भूत और भविष्य की पर्यायें कोई मलिन... मलिन गयी वह भी अन्तर्मग्न हुई, उदयभाव की पर्याय

अन्तर्मग्न हुई, वहाँ अन्तर में उदयभाव से नहीं रही; वहाँ तो पारिणामिक स्वभावभाव हुई। आहाहा! ऐसा मार्ग वीतराग सर्वज्ञ का! ओहोहो! उसमें भी आदिपुराण में १००८ नाम दिये हैं। आहाहा! आज आधे घण्टे स्वाध्याय हो गया, १००८ का! आहाहा! ०६.०० से ०६.३०। ओहोहो! गजब काम किया मुनियों ने! उस समय जो शक्ति के वर्णन का विकल्प आया, आहाहा! वह विकल्प कषाय का समूह है, उससे मेरी चीज भिन्न है और फिर भूतकाल और भविष्य में अनन्त पर्यायें हो गयीं, एक-एक गुण की, ऐसे अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें हो गयीं; ऐसे भविष्य में एक-एक गुण की एक पर्याय, ऐसे अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें होंगी, उन्हें यहाँ व्यक्तियाँ कहा है। सर्व व्यक्ति कहा न? यह व्यक्ति, यह व्यक्ति नहीं कहते लोग? यह व्यक्ति एक आयी। ऐसे यह प्रगट अवस्थायें, आहाहा! इस **चित्सामान्य में निमग्न हैं,...** अकेला मग्न नहीं कहा। निमग्न-स्वभावभावरूप हो गयी है। क्या कहा, समझ में आया? आहाहा! अलौकिक बात है, बापू! तीसरा बोल आया है। आहाहा!

वर्तमान में अनन्त गुण की पर्याय व्यक्त है। वह व्यक्त पर्याय ऐसा निर्णय करती है कि मेरा स्वरूप जो ज्ञायकभाव जो है, उसमें... समझाने में क्या कहें? मैं ज्ञायक हूँ और यह अन्तर्मग्न है, यह भी सब विकल्प है परन्तु समझावे, (तो) क्या समझावे? आहाहा! वर्तमान में जितने गुण हैं, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... इन सभी गुणों की वर्तमान पर्याय मुझे व्यक्त प्रगट है। एक ही पर्याय है, ऐसा नहीं; अनन्त पर्याय है। वे अनन्त पर्याय अन्तर में गयी नहीं। आहाहा! एक बार चन्दुभाई को पूछा था न कि सामान्य में अन्तर्मग्न हो गया तो वर्तमान गयी या नहीं अन्तर में? कहते हैं 'नहीं'। यह व्याख्या तो हो गयी न। आहाहा!

श्रोता : मेरे गुरु तो वर्तमान पर्याय से भी अन्तर्निमग्न हो गये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह निमग्न हुआ है, यह निर्णय किसने किया?

श्रोता : निमग्न होकर निर्णय किया / हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! क्या बोल आया है न? कि आत्मा एक वस्तु है और उसमें अनन्त-अनन्त गुण, अनन्त-अनन्त गुण अर्थात्? जिसकी संख्या की कोई मर्यादा / हद ही नहीं होती। आहाहा! जैसे लोक का अन्त नहीं। कोई हद है? कि अब आकाश

यहाँ हो गया ? क्या है यह ? आहाहा ! इस चौदह ब्रह्माण्ड का अन्त है, असंख्य योजन बस ! परन्तु फिर खाली जगह का ऐसा कहीं अन्त (नहीं)। ऐसा जो अलोक का आकाश है, उसका कहीं अन्त नहीं। आहाहा। उसके अन्तरहित आकाश के अनन्त-अनन्त प्रदेश, उससे भी एक भगवान आत्मा में अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त से अनन्त... अनन्त गुणों का पिण्ड। आहाहा ! क्या कहते हैं यह ? एक बार नास्तिक होवे तो भी उसे विचार में आ जाये कि यह क्या है ? क्या है यह ? और वह अस्तिरूप है। फिर उसका अन्त नहीं, तथापि उसे प्रदेशत्व गुण के कारण आकार है। यह क्या ? किसे ? आकाश को। आहाहा ! ऐसे आकाश के प्रदेशों का आकार है, वे अनन्त-अनन्त प्रदेश हैं, उससे अनन्त-अनन्तगुने भगवान आत्मा में वर्तमान में गुण हैं और उतनी ही अनन्त गुण की जितने अपार... अपार... अपार गुण हैं, उतनी ही वर्तमान पर्याय में अपार... अपार पर्याय प्रगट है। जो प्रगट पर्याय अनन्त हैं, उसे यह.. यह.. यह.. यह.. यह.. यह.. यह.. यह.. अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... तो इस पर्याय की वर्तमान प्रगटता का कोई पर्याय का छोर है, यह वस्तु नहीं। चन्दुभाई, आहाहा !

जो प्रगट पर्याय है, इतनी अनन्त है। आहाहा ! क्षेत्र से ऐसे अन्त आ गया ऐसे इतने में। है ? आहाहा ! परन्तु उसकी जो संख्या प्रगट दशायें, जो सामान्य में वर्तमान मिली ही नहीं। आहाहा ! अनन्त... अनन्त पर्याय, अनन्त... अनन्त... अनन्त जितने गुण उतनी पर्यायें, आहाहा ! उन अनन्त... अनन्त पर्यायों में प्रधानरूप से ज्ञान की पर्याय ऐसा निर्णय करती है, आहाहा ! कि यह चित्सामान्य वस्तु जो है वस्तु, उसमें ये सभी पर्यायें भले मलिन, मलिन हो गयी, थोड़े समय मलिन रहेगी परन्तु जब तक साधक है इसलिए। आहाहा !

अमृतचन्द्राचार्य ने कहा न ? '**कलमाषिताया**' (कलश-३) मेरी पर्याय में कलुषित भाव है। आहाहा ! मेरी पर्याय में दु:खरूप भाव है। आहाहा ! मैं वह नहीं। मैं तो त्रिकाली आनन्दस्वरूप हूँ परन्तु इसकी (समयसार की) टीका करते हुए... यह विकल्प है, उसका भी मैं कर्ता नहीं, यह तो (विकल्प) आ गया और अक्षर लिख गये। वह तो जड़ के कारण लिख गये, मैंने नहीं लिखे, मेरे अक्षर नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

ऐसी अनन्त... अनन्त पर्यायें हो गयीं, कितनी ही, इसकी वर्तमान अनन्त पर्याय

और यह पर्याय अन्तिम है एक, दो, तीन अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... यह अब अनन्त का अन्तिम अनन्त यह है, अन्तिम अनन्त-ऐसा नहीं है। अन्तिम अनन्त भी नहीं। आहाहा! और अन्तिम अनन्त का अन्तिम भाग, वह उसमें नहीं। (कहते हैं) इतनी तो ये प्रगट अवस्थायें हैं। आहाहा! इन प्रगट अवस्था में ज्ञान और श्रद्धा की पर्याय... सामान्यस्वभाव सन्मुख दृष्टि हुई है, उसमें यह निर्णय हुआ है। आहाहा! वर्तमान पर्याय में (निर्णय हुआ है) कि पूर्व और भविष्य की पर्यायें सब अन्तर्मग्न नहीं, निमग्न। निमग्न अर्थात् वे तो पारिणामिकभाव हो गयी, बस। अरे... अरे...! ऐसी बात है। गहन द्रव्यस्वभाव भाई! स्वयंभू भगवान आत्मा! स्वयंभू-स्वयं से स्वयं है और स्वयं से स्वयं प्रगट होता है। आहाहा! एक-एक आत्मा की बात, हों! ऐसे तो अनन्त आत्मायें... आहाहा!

श्रोता : पर्याय और गुण में अन्तर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय अवस्था है, गुण त्रिकाली है। बहुत सूक्ष्म बात है। पर्याय अवस्था वर्तमान एक समय की है और गुण है, त्रिकाल ध्रुव है। सूक्ष्म बात, बापू! एक-एक बात... हैं?

श्रोता : बहुत गहन!

पूज्य गुरुदेवश्री : कितना समाहित कर दिया है। आहाहा! **चित्सामान्य में...** मेरा प्रभु जो सामान्यरूप है जो ध्रुव है। आहाहा! उस ध्रुव में भूत और भविष्य की अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... एक समय की अनन्त, ऐसी-ऐसी अनन्त समय की अनन्त; भविष्य में भी एक समय की अनन्त, ऐसी अनन्त समय की अनन्त। है? आहाहा!

श्रोता : वह अन्दर में जाननेरूप जानकर रही हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं, वह जाने गुण जाने उसे। पर्याय तो गुणरूप से जाने। सर्वज्ञ के ज्ञान में आवे कि यह अंश है, वह इसमें परिणामीरूप से हुआ और यह अंश है, वह प्रगट होगा, यह भगवान के ज्ञान में होता है। यहाँ तो गुण गुणरूप से है, सामान्यरूप से है। अन्तर्मग्न हो गयी है। निमग्न हो गयी है। भाषा देखो न! निमग्न है। नि-मग्न। आहाहा!

उन्मग्न और निमग्न नाम की दो नदियाँ हैं, वैचाक पर्वत में। वह चक्रवर्ती-तीर्थंकर साधने जाता है। स्वयं चक्रवर्ती साधने जाता है, बीच में दो नदियाँ आती हैं। एक नदी उन्मग्न है, एक निमग्न है। आहाहा! उस एक नदी में जो कोई वस्तु गिरे उसे अन्दर डूबा दे-निमग्न (कर दे) और एक नदी में अन्दर वस्तु गिरे उसे बाहर निकाल दे-उन्मग्न। वह निमग्न है, यह उन्मग्न है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में... आहाहा! भूत और भविष्य की अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... एक समय में अनन्त-अनन्त का पार नहीं—ऐसी अनन्त समय की पर्यायें और भविष्य की अनन्त काल की पर्यायें। आहाहा! केवलज्ञान की पर्यायें व्यक्त होगी, तब वह अनन्त... अनन्त होगी और उस-उस पर्याय में अनन्त-अनन्त केवलियों (को) जाने, इतनी एक समय के अविभाग प्रतिच्छेद की ताकत है। ये सभी पर्यायें... आहाहा! मेरा सामान्यस्वभाव ध्रुव निमग्न है। आहाहा! है ? अर्थात् अन्तर्भूत है। परन्तु अन्तर्भूत है, वह पर्यायरूप से अन्तर्भूत नहीं है। अन्तर में भूत है, वह तो गुणरूप से-पारिणामिकभावरूप से सहज... सहज सहजात्मस्वरूप उसरूप से अन्दर है। आहाहा! अरे! ऐसा उपदेश और यह धर्म है।

श्रोता : नयी वस्तु होवे तो नया धर्म होवे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : नया अर्थात् कैसा ? आहाहा!

अब पूरी जिन्दगी में आज आधे घण्टे १००८ नाम का स्वाध्याय हुआ। आधे घण्टे! वह सन्तों द्वारा बनाये हुये हैं। है ? नाम, आहाहा! ऐसे सब नाम से-भाव से भरपूर भगवान है। आहाहा! ऐसे अनन्त नाम हैं। उस प्रत्येक नाम का गुण / स्वभाव है, भाव है। इन सब भाव से भरपूर भगवान है। आहाहा!

वह है, इसलिए अव्यक्त है। क्या कहा ? प्रगट अवस्थायें भूतकाल की और भविष्यकाल की अन्तर्निमग्न हैं; इसलिए उसे अव्यक्त कहने में आता है। किसे ? त्रिकाली सामान्य को। आहाहा! क्योंकि वह त्रिकाली अव्यक्त है, इन पर्यायों में अनन्त पर्यायें इसका निर्णय करे, श्रद्धा के साथ अनन्त पर्याय ढली है और श्रद्धा, परन्तु फिर भी वह भूत और भविष्य की पर्यायें अन्तर्निमग्न हैं, तथापि उसे अव्यक्त कहने में आता है। किसे ? शाश्वत् चीज को, क्योंकि वह स्थायी चीज है, यह निर्णय करती है, उस पर्याय में भी वह चीज

नहीं आती। पर्याय उसे जाने-पर्याय उसे जाने कि यह पूर्ण / पूरा है, फिर भी पूर्णस्वरूप पर्याय में नहीं आता, उसका ज्ञान आता है। आहाहा! श्रद्धा की पर्याय में पूर्ण जितना है, उसकी प्रतीति आवे परन्तु प्रतीति में वह वस्तु है, वह नहीं आती। आहाहा! ओहोहो! ऐसी बात के समक्ष कहाँ दूसरी बातें! है? आहा! संस्कृत में है न यह, देखो! **चित्सामान्य निमग्नम्, समस्त व्यक्तित्त्वात्,** संस्कृत है, इतना शब्द है। **चित्सामान्य, निमग्न, समस्त व्यक्तित्त्वात्, अव्यक्त।** आहाहा! अनन्त-अनन्त पर्यायें प्रगट हैं, व्यक्त हैं और अनन्त-अनन्त पर्यायें इसमें गयी हैं; इसलिए उस वस्तु को अव्यक्त कहने में आता है। व्यक्त थी, वह गयी, उसे यहाँ अव्यक्त कहने में आता है। आहाहा! इसी प्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की पर्याय... यह वस्तु अव्यक्त है अर्थात् सामान्य है, वैसे वहाँ दृढ़रूप से स्थिर होता है, स्थिर चीज में दृष्टि स्थिर होती है। वह स्थिर है, स्थिर सामान्य अन्दर। अन्तर्निमग्न हो गयी, वहाँ यह सब स्थिर है। पर्यायरूप से था, वहाँ अस्थिर था, कम्पन था, सक्रियपना था, पर्यायरूप से जब है, वह सक्रियपना था। आहाहा! चाहे तो सम्यग्दर्शन की पर्याय परन्तु वह सक्रिय है, पर्याय है न? आहाहा! ऐई! उसमें निष्क्रिय गुण है न? सैंतालीस (शक्तियों) में एक निष्क्रिय गुण है। आहाहा! यह पर्यायें सम्यग्दर्शन आदि की वर्तमान के अलावा, वर्तमान पर्याय सक्रिय है। सक्रिय है, वह निष्क्रिय का निर्णय करती है। आहाहा! समझ में आया? वह अनन्त पर्यायें जो प्रगटरूप थीं, अभी है, होगी, इन सबको सक्रिय कहने में आता है परन्तु भगवान आत्मा, वह सक्रिय पर्याय अन्दर गयी, इसलिए (तो भी) उस चीज को तो निष्क्रिय कहने में आता है। आहाहा! ऐसा द्रव्यस्वभाव है। आहाहा! और उसकी दृष्टि करना, वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा! समझ में आया? और उसका ज्ञान करना, वह सम्यग्ज्ञान है और वह चित्सामान्य जो अन्तर्निमग्न पूर्व-भविष्य की पर्यायें... उसमें लीनता होना, वह चारित्र है। यह मोक्ष का मार्ग है। यह तीसरा बोल हुआ।

चौथा (बोल—) **क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं है, (इसलिए अव्यक्त है।)** एक समय की अवस्था क्षणिक है। आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय भी क्षणिक है-एक समय की है। आहाहा! यह तो बहुत सादी भाषा और वस्तु अलौकिक! वर्तमान में प्रगटरूप अनन्त पर्यायें व्यक्तरूप हैं। आहाहा! उस क्षणिक व्यक्तिमात्र यह वस्तु नहीं। आहाहा! एक समय की अनन्त पर्यायें व्यक्त है, अनन्त गुण की अपार, जिनका पार नहीं, ऐसी क्षणिक

व्यक्तिमात्र प्रभु नहीं है। आहाहा! यह दृष्टि का विषय भगवान आत्मा, वह क्षणिकमात्र व्यक्तिरूप नहीं है। क्षणिक व्यक्ति उसका निर्णय करती है, परन्तु उस निर्णय-पर्यायमात्र आत्मा नहीं है। आहाहा! क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं। क्षणिक व्यक्ति 'मात्र' जोर दिया है, एक समय की भले अनन्त पर्यायें हैं परन्तु क्षणिक हैं। आहाहा! जिन्हें नियमसार शुद्धभाव अधिकार में उन क्षणिक व्यक्तियों को-प्रगट दशाओं को नाशवान कहा है, क्योंकि एक समयमात्र की है न? भले केवलज्ञान (पर्याय) हो परन्तु एक समयमात्र की है, वह नाशवान है। आहाहा! और भगवान आत्मा, वह त्रिकाल जो अव्यक्त यहाँ कहा, वह तो अविनाशी है। पलटन (परिवर्तन) में आता नहीं, बाहर में आता नहीं, स्वयं पलटता नहीं। आहाहा!

क्षणिक व्यक्तिमात्र... सहज ही अव्यक्त का बोल आ गया। इस दीवाली और नूतन वर्ष में। आहाहा! **क्षणिक व्यक्तिमात्र नहीं....** राग तो नहीं, पर तो इसमें नहीं परन्तु इसकी क्षणिक पर्याय—मोक्षमार्ग की—आहाहा! जो क्षणिक पर्याय निर्णय करती है... यह पर्याय निर्णय करती है, इतना यह स्वयं नहीं। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। यह किस प्रकार का उपदेश होगा? वह तो ऐसा उपवास करो व्रत करो...

श्रोता : विचार करने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो विचार करने की बात है। 'कर विचार तो पाम' यह विचार, वह पर्याय है। श्रीमद् में आता है न? हैं?

श्रोता : स्वविकल्प या निर्विकल्प?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्विकल्प। यद्यपि राजमल टीका में तो विचार को विकल्पवाला लिया है, पता है? टीका में। परन्तु यह विचार ऐसा नहीं, यह विचार अर्थात् ज्ञान की पर्याय निर्विकल्प को यहाँ विचार कहना है और राजमल टीका में विचार वह तो मन्थन अमुक-अमुक वह सब विकल्प है, है न वह सब कहा है, पता है न? आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहते हैं प्रभु! तू रागरूप तो नहीं, पररूप तो नहीं, परन्तु क्षणिक व्यक्तिमात्र भी तू नहीं। आहाहा! मोक्ष के मार्ग की पर्याय है, वह क्षणिक है, केवलज्ञान स्वयं क्षणिक है, फिर उसकी बात क्या करना? आहाहा! उस क्षणिक व्यक्ति-प्रगट दशारूप

अस्तिरूप है, उतना तेरा स्वरूप नहीं, उतना तू अस्ति नहीं। आहाहा! एक पर्याय की अस्तिरूप से प्रगट है, अस्ति है परन्तु उतना तेरा अस्तित्व नहीं।

श्रोता : थोड़ा अस्तित्व पर्याय का है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा भी नहीं, यहाँ नहीं। अस्ति है, पर्यायरूप से है परन्तु यह मैं उस अस्तिरूप से उतना नहीं, मेरा अस्तित्व तो एकदम भिन्न है। आहाहा! समझ में आया?

उस सत्ता का साहेब, स्वयं की सत्ता, क्षणिक सत्ता से भिन्न रखता है। आहाहा! ऐसी अन्तर क्षणिक सत्ता व्यक्तिमात्र नहीं – ऐसा निर्णय कौन करता है? वह निर्णय तो क्षणिक व्यक्ति ही (पर्याय ही) करती है। चिद्विलास में आया है अनित्य, नित्य का निर्णय करता है; नित्य का निर्णय नित्य कौन करे? आहाहा! क्षणिक व्यक्ति है, वह अनित्य है, यह त्रिकाल मैं हूँ, इतना नहीं – ऐसा निर्णय क्षणिक व्यक्ति करती है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री वीतराग, आहाहा! इन्द्र की सभा में परमात्मा ऐसा वर्णन करते थे। आहाहा! यह चौथा बोल हुआ।

भले क्षणिक व्यक्ति अनन्त हैं वर्तमान, अनन्त है न? परन्तु एक समय का अस्तित्व है। उतना अस्तित्वमात्र मैं नहीं हूँ; मेरा अस्तित्व पूर्णानन्द का पूर्ण / पूरा अस्तित्व है, वह पर्याय में नहीं आता; इसलिए उसे अव्यक्त कहा। वस्तुरूप से तो व्यक्त / प्रगट ही है। आहाहा! ऐसा मैं पर्याय की व्यक्तता की अपेक्षा से अव्यक्त अर्थात् मैं हूँ। आहाहा!

अब पाँचवाँ बोल—**व्यक्तता...** अनन्त प्रगट अवस्थायें और **अव्यक्तता...** त्रिकाली ध्रुव जो है। पर्याय में आता नहीं, इस अपेक्षा से अव्यक्तपना। आहाहा! व्यक्त में आता नहीं, इसीलिए अव्यक्तपना। आहाहा! एक क्षणिकमात्र **व्यक्तता और अव्यक्तता एकमेक मिश्रितरूप से प्रतिभासित होने पर भी...** ज्ञान में तो व्यक्तता और अव्यक्तता दोनों ज्ञात होते हैं। 'ज्ञान' प्रगट दशाएँ और दशा में आया नहीं, ऐसी अव्यक्त प्रगट वस्तु दोनों का एक समय में व्यक्त पर्याय में ज्ञान होने पर भी... आहाहा। 'होने पर भी' क्यों कहा? कि अव्यक्त और व्यक्त का ज्ञान तो दोनों का एकसाथ है। ऐसा होने पर भी **व्यक्तता को ही स्पर्श नहीं करता...** द्रव्य। आहाहा! है? गजब बात है। आहाहा!

फिर से... आहाहा! व्यक्त-प्रगट दशायें और अव्यक्त-पर्याय में आया नहीं—ऐसा

अव्यक्त द्रव्य-दोनों का एक समय में मिश्रितरूप से, देखा ? मिश्रितरूप से ज्ञान है। पर्याय का भी ज्ञान है, द्रव्य का भी ज्ञान है, उसे मिश्रित कहा है - ऐसा मिश्रितरूप से उसे प्रतिभासित होने पर भी (अर्थात्) ज्ञान की पर्याय में पर्याय का ज्ञान और द्रव्य का ज्ञान, ऐसा मिश्रितरूप से भास / प्रतिभास - ज्ञान में प्रतिभास, द्रव्य का और पर्याय का ज्ञान में प्रतिभास... आहाहा! वर्तमान ज्ञान की पर्याय में अपनी पर्याय का प्रतिभास और दूसरी पर्याय का प्रतिभास और उस पर्याय में त्रिकाली द्रव्य का प्रतिभास। वस्तु है, वह तो वस्तु में रही परन्तु जैसे सामने बिम्ब है, वैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब। वह प्रतिबिम्बरूप से है, वह दर्पण है। यहाँ बिम्बरूप से वह नहीं। इसी प्रकार यहाँ व्यक्तरूप से पर्याय है और अव्यक्तरूप से वस्तु है अर्थात् इस पर्याय में आया नहीं इसीलिए, इन दोनों का एक क्षण में मिश्रितज्ञान होने पर भी.. आहाहा! उस व्यक्त को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहा! यह तो अभी दूसरे को छूना और स्पर्श करने की बात चलती है। है ? आहाहा!

वह है न चुम्बन और आलिंगन करना, अरे रे! प्रभु! क्या करता है तू यह ? क्या किया प्रभु ? तू कहाँ गया ? अरे रे!

श्रोता : वह भटकने गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे रे! यह क्या किया भाई! यहाँ तो द्रव्यस्वभाव है, वह पर्याय को स्पर्शता नहीं। अरे रे! तीसरी गाथा में तो ऐसा कहा कि जीवद्रव्य है, वह अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तीन को स्पर्शता है, वह तो पर को चुम्बता नहीं इतना बताने के लिये, पर को छूता नहीं, स्पर्शता नहीं इतना बताने के लिये (कहा है)। अपना भगवान आत्मा अपने द्रव्य-गुण-पर्याय को स्पर्शता है। आहाहा! यहाँ जरा सूक्ष्म है परन्तु है यह अलौकिक बात! आहाहा!

लोग भी आये हैं अलग-अलग हैं। सब कुछ आज।

श्रोता : सब बौनी लेने आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब बौनी लेने आये हैं, सच्ची बात भाई! आहाहा! बात तो सच्ची है भाई! आहाहा!

भगवान आत्मा की पर्याय में लोकालोक का ज्ञान हो और अपने द्रव्य का भी ज्ञान

हो परन्तु यह बात यहाँ नहीं की। मात्र पर्याय का और द्रव्य का ज्ञान... तो पर्याय में लोकालोक का ज्ञान तो है, उसे पर्याय कहते हैं। ज्ञान की पर्याय में, भले श्रुतज्ञान की पर्याय हो परन्तु उस पर्याय का स्व-पर प्रकाशक स्वभाव होने से उस पर्याय में श्रुतज्ञान की पर्याय में भी पर प्रकाशकपना आ जाता है। आहाहा! ऐसी जो एक समय की पर्याय, जिसका ज्ञान स्व-पर प्रकाशकस्वभाव है, १७ वीं गाथा में ऐसा आया है कि वह पर्याय स्व को जानती ही है परन्तु उसकी दृष्टि वहाँ नहीं। यह क्या कहा? कि जो क्षणिक ज्ञान की पर्याय है, उस पर्याय का स्वभाव भी स्व-पर प्रकाशक है; इसलिए वह पर को प्रकाशित करती है ऐसा इसे ज्ञात होता है, परन्तु वह पर्याय स्व को प्रकाशती ही है क्योंकि पर्याय का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है। अकेला पर प्रकाशक है—ऐसा नहीं तथा अकेला स्व प्रकाशक है—ऐसा नहीं। इस पर्याय का सामर्थ्य ही इतना है कि स्व को भी प्रकाशित करे और पर को (भी) अर्थात् स्व को प्रकाशती ही है अज्ञानी की पर्याय भी, परन्तु उसकी नजर वहाँ नहीं। वर्तमान पर्याय त्रिकाल को प्रकाशित करती है, ऐसा पर्याय का स्वभाव होने से वह स्वद्रव्य को पर्याय प्रकाशित करती है परन्तु पर्यायदृष्टिवन्त की दृष्टि पर्याय पर है; अन्तर्मुखदृष्टि पर नहीं। इसलिए उसे जानने में आने पर भी जानता नहीं।

श्रोता : जानने में आने पर भी जानता नहीं!

पूज्य गुरुदेवश्री : जानता नहीं। आहाहा! और यहाँ तो दूसरा सिद्ध करना है कि इसकी जो पर्याय है, वह व्यक्त क्षणिक है और त्रिकाल है, वह ध्रुव है-अव्यक्त है, उसका एक साथ ज्ञान, उस पर्याय में लोकालोक का ज्ञान हुआ, उसे यहाँ पर्याय कहते हैं, पर्याय-उसे यहाँ पर्याय कहते हैं और उस पर्याय का ज्ञान तथा द्रव्य का ज्ञान मिश्रित एक समय में होने पर भी, वह द्रव्य जो अव्यक्त है, वह पर्याय में नहीं आता अर्थात् पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! उसे जाननेवाली पर्याय को जाननेवाला स्पर्श नहीं करता। आहाहा! समझ में आया?

जानता तो है ऐसा कहा। क्षणिक व्यक्तिमात्र-व्यक्तपना, अव्यक्तपना दोनों मिश्रितरूप से अर्थात् समझाना है मिश्रितपना, बाकी तो पर्याय का धर्म ही ऐसा है, स्व को भी जाने और पर्याय को भी जाने। पर को जाने, यह बात तो पर्याय के ज्ञान में आ गयी अर्थात् पर्याय को

भी जाने और द्रव्य को भी जाने, यह तो पर्याय का स्वत: सिद्ध स्वभाव है तथापि... आहाहा! इतनी जो पर्याय कि जो स्व को जाने, स्वयं को जाने पर को जाने – ऐसी पर्याय को द्रव्य स्पर्शता नहीं। आहाहा! बहुत अच्छा अधिकार आ गया है। है ? आहाहा!

जिसकी एक गुण की पर्याय, ऐसी अनन्त गुण की पर्यायें... आहाहा! जैसे एक पर्याय में लोकालोक को एक पर्याय में जानने की ताकत है। वैसे श्रद्धा की पर्याय में उस सबकी श्रद्धा की ताकत है, ऐसी अनन्त-अनन्त पर्यायों में अनन्त-अनन्त ताकत है-ऐसी अनन्त अनन्त ताकतवाली पर्याय को, पर्याय जानती है और वह पर्याय त्रिकाल को जानती है। आहाहा! जानने पर भी वह ज्ञायकस्वरूप, पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! पर्याय उसे जाने, पूर्ण जाने, तथापि वह पूर्ण जाननेवाला उस पर्याय में नहीं आता। आहाहा! क्या ऐसी व्याख्या है! आहाहा!

साधारण जानपना हो वहाँ मानो कि अब हम जान गये, बापू! यह मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा! आहाहा! अन्तर का पंथ, उसके पथिक की-पंथ की दशा कोई अलौकिक है। आहाहा! यहाँ यह कहा। आहाहा! पर्याय में मिश्रित-मिश्रित है अर्थात् ? है तो एक समय की इतनी ताकत / शक्ति परन्तु पर्याय का ज्ञान और द्रव्य का ज्ञान ऐसा 'दो' का कहा न, इसलिए मिश्रित कहा। मिश्रित कहीं एक पर्याय है और ज्ञान की पर्याय द्रव्य की है और पर्याय की पर्याय, ऐसा वहाँ मिश्रित हो गया, ऐसा नहीं है परन्तु दोनों का साथ में ज्ञान है; इसलिए मिश्रित कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया ?

अब इसमें व्रत पालना और उपवास करना ऐसो को तो मार्ग जँचे किस प्रकार ? भगवान की भक्ति करो, गुरु की भक्ति करो मिल जायेगा। आहाहा! धूल भी नहीं। सुन न! है ?

श्रोता : नहीं है, यह आप कहते हो, वह सरल लगता है परन्तु है वह जरा कठिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : है, परन्तु वस्तु है या नहीं ? जिस पर और जिसकी भूमिका पर पर्याय होती है, वह कोई चीज है या नहीं ? जिस पर पर्याय होती है, वह कोई ध्रुव भूमि है या नहीं ? आहाहा! जिस पर पर्याय तिरती है, ऊपर तैरती है तो अन्दर कोई चीज है या नहीं ? आहाहा! अरे! अन्तर में माहात्म्य आना। आहाहा! जिसकी धरती में जो घासफूस

उगा, तो धरती है या नहीं ? इसी प्रकार जिसकी भूमिका में से पर्याय उगी हुई—उसकी कोई भूमि-ठोस भूमि, ध्रुव है या नहीं ? यहाँ तो कहते हैं कि उसका और पर्याय का ज्ञान होने पर भी, आहाहा! 'होने पर भी' ऐसा कहा न ? ऐसा क्यों कहा ? कि दोनों का ज्ञान होने पर भी द्रव्य, पर्याय को छूता नहीं। दोनों का ज्ञान एकसाथ होने पर भी वह द्रव्य उस पर्याय को स्पर्श नहीं करता। पर्याय में द्रव्य का ज्ञान होता है, पर्याय में पर का ज्ञान होता है, ऐसी जो पर्याय उसमें स्व-पर का मिश्रित ज्ञान कहने में आया तथापि, ऐसा होने पर भी जिसमें द्रव्य का ज्ञान आया, पर्याय का ज्ञान आया, तथापि वह द्रव्य, जिस ज्ञान ने निर्णय किया है उस पर्याय को वह द्रव्य छूता नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

एकमेक मिश्रितरूप से प्रतिभासित होने पर भी वह केवल व्यक्तता को ही स्पर्श नहीं करता... वह पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! पर्याय में उसका ज्ञान होने पर भी वह यह ज्ञान जिसका हुआ, वह वस्तु उस पर्याय को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! पर्याय में उस वस्तु का ज्ञान होने पर भी, वह ज्ञान हुआ उस पर्याय को वह वस्तु स्पर्श नहीं करती। आहाहा! ऐसी बातें हैं। लो! तीन, चार और पाँच हुए न। **इसलिए अव्यक्त है।**

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)